शोध मंथन Vol. XVI No.2 Apr.- June. 2025 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X
Available at: *https://anubooks.com/journal-volume/shodhmanthan-vol-xvi-june-2025-no2*

समकालीन चित्रकला के स्वरूप पर पाश्चात्य कला का प्रभाव

प्राप्तिः 15.03.2025
स्वीकृतः 22.04.2025

42

निधि
शोधार्थी (ललित कला विभाग)
मेरठ कॉलिज, मेरठ।
ईमेलः Knidhi2831992@gmail.com

डॉ. अमृत लाल
प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
ललित कला विभाग,
मेरठ कॉलिज, मेरठ।
ईमेलः amritlal231972@gmail.com

सारांश

भारत सदा से ही संस्कृति, सभ्यता और साहित्य का धनी देश रहा है। यहाँ पत्थर में भी जीवंत कला के दर्शन होते हैं। समय–समय पर विदेशी यात्रियों, कलाकारों व आकृमणकारियों द्वारा यहाँ नवीन परिवर्तन होते रहे। कभी सकारात्मक तो कभी नकारत्मक। मुगलों के आगमन से मुगल शैली का जन्म हुआ। जिसने भारतीय मध्यकालीन कला में विशेष भूमिका निभाई तो दूसरी तरफ कम्पनी शैली के प्रभाव से तत्काल कला में गिरावट आई। खैर परिर्वतन समय की मांग है। इन्हीं परिवर्तनों के चलते देश–विदेशें में कला की अनेक शैलियों का जन्म हुआ। जिनसे कला को नवीन रूप देने वाले 'वाद' प्रकट हुए जो कल्पना, स्वप्न, द्वंद्व व प्रकाश के चित्रण तथा ज्यामितीय प्रभावों को आत्मसात किए हुए हैं।[1]

मुख्य बिंदु

समकालीन, पाश्चात्य, कैनवास, ज्यामितीय, सकरात्मक, प्रभाववाद।

डेरेक बोशिर का 'कला आंदोलनों' के बारे में कहना है कि कलावाद आते जाते रहते हैं। किंतु वे कला के दृश्य शब्दावली में शामिल करने के लिए अपने पीछे एक निश्चित अनुमेयता छोड़ देते हैं। जो अब से पहले उपयोग में नहीं थी। उदाहरण के लिए अमूर्त अभिव्यक्तिवाद (अभिव्यंजनावाद) कैनवास पर रंग को फेंकने का एक 'विचार' लाया कि किस तरफ से आप रंग फेंकते हैं। ऐसे ही पॉप कला ने विषय वस्तु के रूप में कुछ भी उपयोग करने की क्षमता को पीछे छोड दिया। हालांकि ऐसे में कुछ बुरी बातें भी हैं लकिन फिर भी आंदोलन एक तरह की विरासत को पीछे छोड़ देता है। जिससे इतिहास दर्ज होता चला जाता है।

पश्चिमी देशों में शुरू हुए विभिन्न कलावादों का पूरी दुनिया पर परोक्ष या प्रत्यक्ष प्रभाव रहा। किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि जिस देश में उसका सूत्रपात हुआ उससे ज्यादा वह दूसरे देश में प्रसिद्ध या प्रभावित रहा हो। दरअसल सभी कला परिवर्तन अपने उद्गम क्षेत्र में ज्यादा प्रभावी व शुद्ध रहते हैं। समय, सीमा व स्थान बदलने पर उनमें परिवर्तन निश्चित है। जैसे घनवाद का प्रभाव जितना पेरिस मे रहा उतना भारत में कभी नहीं रहा और ना ही होगा। क्योंकि भौगोलिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक मुद्दों के चलते कला में स्थान परिवर्तन होते ही हैं। अतः आंदोलनों का महत्त्व

https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2025.v16i02.42

उसी स्थान का होता है जहाँ से वे शुरू होते हैं अन्य किसी जगह से उनका संबंध बेहद अच्छा होता है। किंतु जो भी प्रभाव फिल्टर होकर आते हैं उनमें दूसरे स्थान की झलक जरूर प्रकट होती है। गगेन्द्रनाथ का घनवाद भारतीय घनवाद था। जिसमें ज्यामितीय यांत्रिकता की जगह भारतीय सौम्यता के दर्शन होते हैं। शैलोज मुखर्जी की अभिव्यंनावादी तूलिका में देसी पुट स्पष्ट नजर आता है तो रज़ा साहब की सपाट रंगों के क्षेत्रों में पाश्चात्य प्रभाव रंगक्षेत्रीयवाद के प्रभाव के साथ–साथ सृष्टि के उद्‌भव के साक्ष्य तथा जीवन का अंकुरण प्रकट हुआ। विकास भाट्टचार्य की रहस्यमयी कृतियाँ साल्वाडोर डाली से बेहद भिन्न है किंतु फिर भी अतियथार्थवाद की अच्छी उदाहरण है। भारतीय कलाकारों ने सभी पाश्चात्य कला शैली को अपने ढंग से आत्मसात किया। किंतु एक समय ऐसा भी था जब पश्चिात्य कला से प्रेरित कलाकार अपने आप को प्रगतिशील आंदोलन के मुखिया कहते थे साथ ही पश्चिमी कलाकारों की कोरी नकल को दंम से कहते थे कि टू एबजॉर्ब दि ग्रेट मास्टर्स स्टाइल्स इज आल्सो क्रिएटिविटी।[2]

इस प्रकार वो अपनी समृद्ध कला परंपरा को नीचा दिखाकर पश्चिमी कला शैलियों को सर्वोपरि साबित करते। जो बेहद सतही व सांसारिक है। जबकी 1919 के मार्शल दुचम्प ने प्रसिद्ध इटालियन मास्टर की कृति मोनालिसा की मूंछे बनाकर उसका मजाक उडाया। वे प्राचीन नियामों की खिल्ली उडा रहे थे। हाँ, यह सत्य है कि विभिन्न स्कॉलरशिप को लेकर पश्चिम में गए भारतीय कलाकारों ने समय–समय पर वहाँ के परिवर्तनों को अपने देश से सांझा किया और यह जरूरी भी है कि कलाकार समय के साथ दुनिया में हो रहे कला परिवर्तनों को लेकर सजग रहे। साथ ही स्थितिनुसार अपने अनुभवों के द्‌वारा उसे नवीन तरीके से पेश करें। इसे ही रचनात्मकता कहा जाता है रज़ा सहाब की प्रेरणा भारतीय योग व तंत्र रही किंतु प्रस्तुतीकरण के स्रोत के आरंभ पश्चिमी रंगाक्षेत्रीय कला व अमूर्त अभियंजनवादी कला रही। ई0 वी0 हैवेल का कथन यहाँ बेहद उचित प्रतीत होता है कि किसी भी कला में परिवर्तन संभव है किंतु आमूल परिवर्तन नहीं ऐसे में कला की स्वच्छता भंग हो जाती है।

नवीनता का आग्रह करने पर कला समीक्षकों का रवैया भी कलाकार के प्रति कभी–कभी कटु हो जाता है। एक बार लंदन में सूजा ने बताया था कि जॉर्ज बूचर भारत से जो प्रदर्शनी लेकर आए थे उस पर विलियम आर्चर ने कटाक्ष करते हुए अपनी समीक्षा में लिखा था कि हुसैन इज नथिंग बट अरलियर मातिस।[3]

पाश्चात्य कला में छाया –प्रकाश व भारतीय कला में रेखा की प्रधानता रही है। किंतु बदलते समय के साथ कला का रूप शैली व प्रकृति बदलती रही है। कलाकारों ने अपने अस्तित्व के औचित्य को बनाए रखने के लिए समाज के साथ ही अपनी कलम का रूख भी बदल लिया। ऐसा ही बदलाव फ्रांस में भी देखने को मिला जब कलाकारों ने यथार्थवाद और स्वछंतावाद के नियमों को नकार कर अपने कुछ मौलिक कला के सिद्धांत स्थापित किए। जिसे प्रभाववाद के नाम से जाना गया। प्रभाववाद के शुरूआती लक्षण 1862 से आरंभ हुए, व पतन 1892 के करीब माना जाता है। प्रभावाद से पहले यथार्थवाद भी अपने पूर्व के कला नियमों व तौर–तरीको के विरूद्ध खडा हुआ था। क्योंकि उस समय फ्रांस में दमनकारी शासन था। ऐसे में कलाकार मात्र पौराणिक कथाओं व शास्त्रीय

कला का गुणगान कर रहे थे। कुर्बे जैसे उग्र कलाकार ने अपने नवीन विषय में मौलिकता से यूनिवर्सल एक्सपोजिशन (पेरिस) के खिलाफ 1855 में अपनी प्रदर्शनी लगाई। जो नई विचारधारा रखने वाले कलाकारों के लिए पथ प्रदर्शक साबित हुई अब तत्वकाल समाज की परिस्थिति तथा दशा को लेकर कलाकार की कूची गंभीर हो गई। उसकी नजर अब काल्पनिक कथाओं व कहानियों का महितमंडल न करके तत्काल समय में घटित हो रही सामाजिक घटनाओं पर टिक गई।[4]

किंतु समय के साथ मात्र समाज के यथार्थ चित्रण से भी कलाकार उब गया। आखिर चित्रकला में यदि यथार्थ से हटकर कुछ नया परिवर्तन नहीं दर्ज किया जाए तो वह नीरस हो जाता है। ऐसे में प्रभाववदी कलाकारों ने लीक से हटकर नई पद्धति को अपने पट पर स्थान दिया। अब तक कला में विषय का बहुत महत्त्व था किंतु प्रभाववदियों ने विषय के महत्त्व को नकार दिया। उसके स्थान पर बेहद साधारण दैनंदिन प्रसंग को अपनी तूलिका से चित्रित किया। अब ऐतिहासिक व पौरािणिक व महिमामंडल को त्याग तत्काल समाज की जीवन शैली पर आधारित चित्रण आरंभ हुआ।

प्रभाववाद के जन्म के मुख्य कारण

चार्ल्स बोडेलेयर (1824–67) ने 1846 के आरम्भ में सैलून प्रदर्शनी के दौरान कलाकारों के अतीत की परिपाटी पर चित्रण करने के ढंग की आलोचना करने हुए कहा कि कलाकारों को आधुनिक जीवन पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। जीन बैप्टिस्ट केमिली कोरोट ने नवशास्त्रीय सिद्धांतों को यथार्थवाद के नजरिये के साथ मिश्रित किया। यहाँ उन्होंने एन प्लेन एयर (आउटडोर) पेंटिंग के माध्यम से इसे हासिल किया। जिसकी शुरूआत 19वीं शताब्दी में जॉन (1776–1837) तथा जे0 एम0 डब्लू द्वारा की गई थी।[5]

पेरिस का विकास 1853 में शुरू हुआ। अब पुरानी संकरी गलियों की जगह समृद्ध पूजीपतियों के लिए विस्तृत बुलेवार्ड, दुकाने, अपॉइंटमेंट ब्लॉक व कैफे बने। आज के आधुनिक पेरिस के विकास का श्रेय बैरन हॉसमैन को जाता है। इस समय नए रेलवे टर्मिनल शामिल किए गए जो नए–नए उपनगरों में परिवहन प्रदान करते थे। ये उपनगर सीन नदी के किनारे बसे जो पूजीपतियों के लिए मनोरंजन की गतिविधियों का अड्डा बन गए। इन्हीं परिवर्तनों को कलाकारों ने चित्रित किया। एडुअरीज मैनेट सबसे पहले ऐसे कलाकार थे जिन्होंने अपनी पेंटिंग म्यूजिक इन द टयूलरीज गार्डन 1862 में बोडेलेयर की आधुनिक जीवन के चित्रण के आहवान को चरितार्थ किया था।[6]

1863 में आधिकारिक वार्षिक कला सैलून द्वारा बहुत बड़े पैमाने स्वतंत्र विचारों को व्यक्त करने वाले कलाकारों की कलाकृतियों को नकारा गया। क्योंकि उनके तरीके थोड़े अपरंपरागत थे। अब तक तेल रंगों की रंगाकन पद्धति में पहले गहरे क्षेत्रों अंकित किया जाता व बाद में ऊपर हल्के रंगों के क्षेत्रों को रंगा जाता। परंतु माने ने इस परिपाटी को नकारते हुए सर्वप्रथम हल्के रंगो व बाद में गहरे से वांछित क्षेत्रों का ऊपर से दबाया। ऐसा करने से छाया के क्षेत्र और भी चमकीले व पारदर्शी दिखाई पड़े। परंतु ऐसा अपरम्परगत कार्य सैलून द्वारा मान्य नहीं था। माने द्वारा बनाया गया तृण पर भोजन इसी पद्धति का उदाहरण है। इसमें चित्रित नग्न स्त्री में किसी शालीन शास्त्रीय या किसी देवी के दर्शन ना होकर समकालीन वेश्या के गुण प्रतीत हो रहे थे। जो अकादमिक के नियमों के विरूद्ध था। हालंकि माने के समर्थकों ने इसे राफेल द्वारा बनाई गई पेरिस का निर्णय प्रकृति के एक हिस्से

https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2025.v16i02.42

बनाए गए तीन देवताओं के समूह से प्रभावित बताया किंतु यह मान्य नहीं था। इन सभी के चलते प्रभाववादी कलाकारों ने नवीन शैली का आगाज किया।

भारत में प्रभाववाद का प्रभाव

प्रभाववाद का प्रभाव राजा रवि वर्मा के कुछ आरभिंक चित्रों में आंशिक रूप से देखा जा सकता है। नंदलाल बोस द्वारा भी कहा गया था कि भारतीय कला में प्रभाववाद के कुछ तत्वों का पता लगाया जा सकता है।[7]

एन0 एस0 बेंद्रे

1910 में इंदौर में जन्म एन0 एस0 बेंद्रे ने 1929 में वहाँ इंदौर के राजकीय कला विद्यालय से प्रशिक्षण प्राप्त किया। उनके शुरूआती चित्रों में प्रभाववादी तथा अकादमिक शैली का प्रभाव दृष्टिगोचर है। उनका समर फॉरेस्ट चित्र (1956 / कैनवास पर तेलचित्र) बिंदुवाद का उदाहरण है। जिसके प्रणेता सोरा रहे हैं हालांकि यह भारतीय कला इतिहास में प्रचुर मात्रा में पहले से ही व्याप्त था क्योंकि आइवरी ड्रइंग एक प्रकार की बिंदुवादी कला ही है। इसमें गहराई और छाया लौटने पर उन्होंने अपने आप में बढ़ती बेचैनी को पहचाना व स्वंय को राष्ट्रीय कला आंदोलन की मुख्य धारा से कटा हुआ महसूस किया। वह मानते थे कि कश्मीर ने उनके विकास में योगदान दिया है। इसकी सुदंर भव्यता ने उन्हें एक परिदृश्य के बदलते मूड को रिकॉर्ड करने के लिए तेजी से स्केचिंग करने की तकनीक सीखने में मदद की। उन्होंने वायुमंडलीय रंगो के अलग–अलग ओवारटॉन को भी पहचाना, जो मौसम के साथ बदलते थे। एक और महत्त्वपूर्ण अहसास यह कि मौके पर चित्रण करते समय दृश्य का तत्काल प्रभाव रंग की किसी भी व्याख्या की अनुमति देने के लिए बहुत अधिक शक्तिशाली था।[8]

बेंद्रे ने 1930 व 1940 के बीच बनाए गए इंदौर, कश्मीर, बनारस व हरिद्वार के सैराचित्रों में प्रभाववादी चित्रकला का इस्तेमाल है। कला शिक्षा में उनके प्रयोग बड़ौदा में परिपक्व हुए। यहीं से उन्होंने अपने गंभीर अन्वेषणों का आरंभ किया। अब तक उन्होंने जलरंग माध्यम को संभालने में जबरदस्त अनुभव को प्रदर्शित किया, खास तौर पर अपारदर्शी गौचे और पेस्टल के उपयोग दोनों में उन्होंने सैरादृश्य व मानवीय अध्ययन किया, जिसे प्रभाववादी शैली में गिना जाता है। इसमें उन्होंने उष्णकटिबंधीय प्रकाश और धूप के प्रति संवेदनशीलता दर्शाते उनके इस कार्य को ब्रिटिश कलाकारों के साथ सरेखित करता है। घूमने की लालसा ने बेंद्रे को भारत के कई हिस्सों में घुमाया उन्होंने कश्मीर के पर्यटन विभाग में नौकरी की। इस दौरान हर की पौड़ी, हरिद्वार, बनारस घाट, ओंकारेश्वर व इंदौर के पास के दृश्यों को विषय रूप में चुना। शायद ही बेंद्रे से पहले इन प्लेन एयर परिदृश्यों को प्रभाववादी शैली में किसी ने बनाया होगा। तौर पर धूप के संयोजन का वैज्ञानिक निरीक्षण किया। यहाँ रंगों की अतिश्योक्ति के साथ काले रंग को भी जोड़ा गया जो प्रभाववाद में अनुपस्थित रहा है यहाँ जर्मन अभिव्यक्तिवादी शैली के साथ 19वीं सदी के उत्तरार्ध की फ्रांसीसी प्रभाववादी शैली का बेहतर प्रयोग है।[9]

1947 में मुंबई में गठित प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट ग्रुप (पी0जी0) के प्रतिष्ठित कलकारों के समूह ने देश के आधुनिक कला परिदृश्य में बदलाव को जन्म दिया। लेखक मुल्क राज आनंद द्वारा इन सदस्यों का भारतीय कला की दुनिया में एक नई सुबह के अग्रदूत की संज्ञा दी गई। यह सत्य भी

क्योंकि उन्होंने अपने समय के रूढिवादी कलात्मक प्रतिष्ठानों को नकारे हुए उन्हे अपने ढंग से चुनौती दी। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रभाववाद, उत्तर प्रभाववाद तथा अभिव्यंनावाद व घनवाद का भारतीय विषयों के साथ सुंदर ढंग से संश्लेषण हुआ। तैयब मेहता ने अपने आरंभिक चरण में प्रभाववादी शैली को थोड़ी समय के लिए अपनाया था। ऐसे ही रज़ा सहाब तथा अन्य प्रोगेसिव आर्टिस्ट ग्रुप के कलाकारों के चित्रण में भी प्रभावादी तूलिका संचालन नजर आता है।[10]

गाडे ने प्रभाववादी शैली में कई चित्रों का सर्जन किया। किंतु रंगों की तान प्रभाववादी नहीं है वहाँ उनमें चटक व तेज रंगों के साथ छोटे तूलिका घात लगाए है। बाह्य रेखा धुंधली कर दी गई है बल्कि कहीं–कहीं तो बाह्य रेखा न दिखाकर मात्र रंगों के क्षेत्रों से ही सांयोजन को बांटा गया है। उनके लिए रंग, रेखा से ज्यादा अहमियत रखते थे। चित्र हाउसिंग कॉम्पलेक्स,1960 (कैनवास पर तेल रंग) शिवालिक 1990 (कैनवास पर तेल रंग) में प्रभाववाद का दबदबा रहा है साथ ही उत्तर प्रभाववाद की प्रवृत्ति को कुछ चित्रों में धारण किया।[11]

गोपाल घोष के चित्रों में काव्यात्मकता तथा अभिव्यंजना शामिल है। लेकिन उनके चित्रों में प्रभावादी शैली के गुण भी हैं। ये कलकत्ता ग्रुप के संस्थापक सदस्य रहे। उनके पसंदीदा तेज रंग के पैच के साथ टूटे हुए मधुर धुंधले रंगों को देखा जा सकता है। उनके द्वारा बनाए गए चित्र मंसूरी के पास गांव में तूलिका के छोटे–छोटे स्ट्रोक्स दर्शनीय। साथ ही धुंधली सीमा ने चित्र में कोमलता को प्रकट किया है। हालांकि जहांगीर सबावाला के कार्य में घनवादी प्रभाव की अधिकता है, किंतु वहां प्रभाववाद भी नजर आता है। दरसल ट्री एंड 1978 चित्र में आकाश, परिदृश्य, पेड़–पौधे व लोगों को एक तरह से विलीन होते दिखाया है प्रकाश, रंग व टेक्सचर पर जहांगीर की सिद्धस्ता का अच्छा उदाहरण है। सीमा रेखा को धुंधला कर दिया गया है।

निखिल विश्वास तकनीकी विचारों के साथ–साथ हमेशा समकालीन कलात्मक विचारों में परिवर्तन लाने के लिए तत्पर रहते हैं।वह कलकत्ता के संस्थापक सदस्य भी थे। जब भारतीय कला जगत अमूर्त लहर के बीच डोल रहा था तब निखिल ने मानवतावादी पूर्वाग्रहों की घोषण की। उसके अनुसार में समाज से निर्वासित और एकांत हूँ और अंतहीन पीड़ा मेरी गवाह है। 1950 के दशक में उन्होंने मानवतावादी आकृतियों को अभिव्यक्ति देने के लिए तथा बाहरी और आंतरिक स्व के बीच नश्वर संघर्ष के क्षण में काली स्याही और महीन रेखाओं का उपयोग किया। इनके द्वारा 1953 में मेसोंनाइट बोर्ड पर तेल रंग से बनाया गया अन्टाइल्ड चित्र जिसमें दो महिलाओं का पोट्रेट चित्रित किया है, में प्रभाववादी शैली में रांगों के छोटे–छोटे घूमावदार तूलिका घातों का इस्तेमाल किया है यद्यपि रंगों को मिश्रित नहीं किया।[12]

बंगाल में जन्मे अवनी सेन प्रतिभाशाली भावुक कलाकार थे। उनके चित्र, रेचाचित्र आने वाली पीढ़ी के लिए एक मार्गदर्शक हैं। स्वयं अवनी सेन ने कहा कि मेरे चित्रों में मैं स्वयं को उन चीजों को रूप में परिवर्तित करने की कोशिश करता हूँ। जिन्हें में स्वयं को उन चीजों के रूप में परिवर्तित करने की कोशिश करता हूँ। जिन्हें मैं चित्रित करता हूं चाहे वह स्थिर गतिमान या जीवित ही क्यों न हो और इस प्रयास के दौरान मुझे एक शाश्वत आनंद का आवेग महसूस होता है। इनके चित्रों में भी प्रभाववादी लक्षण का दृष्टिगोण पर होते है। प्रभाववादी चित्रकारों में डी0 पी0 धूलिया,

https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2025.v16i02.42

रणवीर सक्सेना, रणवीर सिंह बिस्ट, सै0 अजमत षाह, मो0 सलीम, रामकुमार भी ऐसे कलाकार है जिनके चित्रण कार्यों में आंशिक या पूर्णत प्रभाववादी झलक को कभी–कभी देखा जा सकता है।

अभिव्यंजनावाद का प्रभाव

प्रभाववाद ने समय के बदलते क्षण को प्रकाश के प्रभाव के साथ चित्रित किया। उन्होंने अपनी नजर को बाह्य दृश्यों के प्रति इतना समर्पित कर दिया था कि मानव मस्तिक को भावनाओं व संवेदनाओं के लिए उनके पट पर कोई स्थान नहीं था। इस प्रकार जब कलाकार ने बाह्य रूप की उपेक्षा करके अपनी निजी भावनाओं को अभिव्यक्त करने के उद्देश्य से कला चित्रित की तो ऐसी कला को अभिव्यंजनावादी कला कहा गया। इस शैली में कलाकार व्यक्ति के शरीर व वस्तु के नैसर्गिक रूप को अपनी सोच विचार व भावनाओं के अनुकूल विकृत बनाता है। किसी भी प्रकार की आकर्षक रंगसंगति का विचार प्रकट नहीं किया जाता है बल्कि भावनाओं के पोषक रूप में गहरे एवं विरोधी रंगों का प्रयोग होता है। इसमें रेखांकन पद्धति का मूल कौशल, अध्ययन व नियंत्रण न होकर बल्कि सहज प्रवृत्ति होती है।[13]

कुछ ऐसे साहित्यिक, सामाजिक व राजनीतिक कारण रहे जिनके चलते अभिव्यंजनावादी प्रवृत्ति का जन्म हुआ। आंरी बर्गसों (फ्रेंच दार्शनिक) की पुस्तक 'सर्जनशील उत्क्रांति' में जो विचार प्रकट किए गए थे। उनका विंडेलबांट ने तथा जीम्मेल ने जर्मनी भाषा में प्रसार किया। इन विचारों का जर्मनी कलाकारों पर बहुत प्रभाव पड़ा। साथ ही बर्गसों ने सहज ज्ञान के द्वारा किसी भी कृति व रचना आदि के निर्माण पर बल देते हुए कहा कि जब हम बाह्य बंधनों से स्वयं को मुक्त करके कार्य करते हैं तो ही सर्जन होता है। इस प्रकार इन विचारों ने कलाकार को कठोर शास्त्रीय बंधनों से मुक्त होने तथा पारंपारिक परिपाटी को त्यागने का एक वैकल्पिक सुझाव दिया।[14]

फ्रांस व जर्मनी दोनों ही देशों में उथल–पुथल का वातावरण था। औद्योगिक विकास के परिणामस्वरूप एवं युद्ध की आकांक्षा के चलते व्यक्ति में पैदा हो रही विकार ग्रस्त मनोवृति ने कला व संस्कृति पर प्रतिकूल प्रभाव डाला। जिसके चलते कलाकार ने संयमित व सौम्य कलाकृति के स्वरूप को त्याग कर विकराल रूप धारण कर लिया। जिस प्रकार फ्रेंच विचारधारा में बुद्धि तथा तर्क निष्ठा का प्रभाव होने पर घनवाद जैसी तार्किक व गणितीय आधारित कला की रचना हुई वैसे ही जर्मनी के कलाकारों में औद्योगिक विकास व यांत्रिक वातावरण के प्रति घृणा थी। जिसके चलते उनकी कला ने मानव के आंतरिक जीवन को प्रकाशित करने के लिए प्रतीकात्मक रंगों से भावनाओं द्वारा विकृत आकारों की नई रचना की गई। यद्यपि अभिव्यंजनावाद के विकास में घनवाद व फाववाद की प्रेरणा रही है। किंतु जर्मन चित्रकारों ने विश्व के आंतरिक सत्य की खोज करने की कोशिश में मात्र दुख, निराशा व मृत्यु को ही पाया। इस वाद के प्रमुख कलाकारों में मंक, एन्सोर, कान्डिन्सकी आदि गिना गया है।[15]

इस प्रकार धीरे–धीरे जिस कला में यथार्थ के स्थान पर व्यक्ति की व्यक्तिगत प्रतिक्रिया व भावनाओं को ज्यादा महत्त्व दिया जाने लगा उसे ही अभिव्यंजनावादी कला कहा गया। इसमें कलाकार भावनाओं व संवेगों के द्वारा एक भिन्न किस्म की सृष्टि की रचना करता है व यहाँ अकसर

मृत्य, दुःख, यंत्रणा, भय, निराशा, उत्कुंठा, बैचेनी, वेदना आदि को विषय के रूप में चुना गया। जो दर्शक में तीव्र भावनाओं को जागृत करती थी।

संदर्भ

1. भारतीय कला आरंभ से ही पहचान की तलाश में, कलाकार हस्तशिल्प संघ चोलामण्डल, कलाकार विलेज, मद्रास, 60004, पृ० सं०–07
2. समकालीन कला, नवम्बर 1987, मई 1988, अंक 9–10, पृ० सं०–47
3. वही, पृ० सं०–48
4. रोबिंसन, माइकल, इम्प्रेशनिस्ट मास्टरपिस्जि ऑफ आर्ट, फ्लेम ट्री पब्लिशिंग, पृ0सं0–06
5. वही, पृ० सं०–07
6. साखरलकर, र0वि0, आधुनिक चित्रकला का इतिहास, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृ० सं०–43
7. वही, पृ० सं०–44
8. रोबिंसन, माइकल, इम्प्रेशनिस्ट मास्टरपिस्जि ऑफ आर्ट, फ्लेम ट्री पब्लिशिंग, पृ० सं०–10
9. रिचमैन कैली, किस प्रकार जापानियों ने यूरोपियन प्रभाववादी कलाकारों को प्रभावित किया, अद्यतन तिथि 14 दिसम्बर 2017, अभिगम तिथि 27 अक्टूबर 2018, https:// mymodernmet.com/japnese.art-impressionism-japonism.
10. साखरलकर, र0वि0, आधुनिक चित्रकला का इतिहास, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृ० सं०–40
11. लुईस, मैरी टोम्पकिन्स (सम्पादक), प्रभाववाद व उत्तर–प्रभाववाद में आलोचनात्मक अध्ययन : एक संकलन, यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस, 2007, पृ० सं०–01
12. चटर्जी, राम बेंद्रे : द पेंटर एण्ड व पर्सन, द बेंद्रे फांउडेशन फार आर्ट एण्ड कल्चर एण्ड इुंडस कॉर्पोरेशन, पृ० सं०–22
13. https://dagworld.com/nikhibiswas.html
14. पंत, गरिमा, एक कलाकार अपनी पेंटिंग के दायरे तक सीमित नहीं रहता, अद्यतन तिथि 14 फरवरी, 2003, अभिगम तिथि 19 दिसंबर, 2022, https://www.tribuneindian.com/2003/ 20030214/ncr2.htm
15. साखरलकर, र0वि0, आधुनिक चित्रकला का इतिहास, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृ० सं०–179